पर्यावरण संरक्षण : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 अन्जू*

सारांश

वर्तमान समय में आर्थिक विकास की दौड़ में हमारा परिस्थितिकी सन्तुलन बिगड़ चुका है, जिससे पर्यावरणीय विवाद में वृद्धि हुई है। खाद्यान्न संकट, ऊर्जा की कमी, आर्थिक मंदी जैसी अनेको समस्याएं खड़ी हैं। इनमें ग्लोबल वार्मिंग एक प्रमुख विकट समस्या है, जिसका सम्बद्ध इन सभी समस्याओं से है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन के कारणवश पर्यावरणीय विवाद खड़े हुए है। पृथ्वी का तापमान बढ़ने से ग्लेशियर पिघल रहे है। समुद्र जल स्तर बढ़ने से कई द्वीप विलुप्त होने की कगार पर है। इस समस्या से निपटना मानवता एवं सभ्यता के लिये अनिवार्य होता जा रहा है। आज सभी अर्न्तराष्ट्रीय मंचों पर ग्लोबल वार्मिंग का मुद्दा प्रमुख है क्योंकि यह सबके अस्तित्व से जुड़ा हुआ मुद्दा बन गया है।

ग्लोबल वार्मिंग के कारणों का सम्बन्ध हरित प्रभाव से है। इससे जलवायु परिवर्तन की समस्या सामने आयी है। पर्यावरणीय विवादों के लिये उत्तरदायी कारणों में प्रमुख कारण कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में वृद्धि होना हैं इसका एक अन्य कारण क्लोरोफ्लोरो कार्बन का उत्सर्जन भी हैं व्यापक स्तर पर वन विनाश ने इस समस्या को और भी विकट बना दिया है, क्योंकि इससे पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ रहा हैं ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव इतने बहुआयामी है कि उसकी सूची बना पाना सम्भव नही है फिर भी इससे ग्लेशियरों पर प्रभाव, मानव समुदाय पर खतरा, मानसून में विक्रतियां और कृषि पर दुष्प्रभाव तथा वायुजनित बीमारियों का प्रकोप शुरू हो गया हैं ऐसे में आवश्यकता है कि इस समस्या का सामना सम्पूर्ण विश्व मिलकर करें, क्योंकि यह किसी एक देश की समस्या नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व की है।

इस सन्दर्भ में प्रमुख समाजसेवी राधा बहन के विचार को उद्धृत करना आवश्यक होगा। उनके अनुसार ''मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान भोग प्रधान विकास नीति के रहते पर्यावरण का संरक्षण एवं संबर्द्धन असंभव कार्य हैं हम अपने अनेक प्रयासों से पैबन्द लगाने का कार्य कर सकते है। परन्तु एक स्थायी परिवर्तन लाने के लिए हमें विकास के सारे ढॉचे को ही बदलकर देखना होगा। मनुष्य अपनी आजीविका, अस्तित्व तथा जीवन का सुख एवं आनन्द प्रकृति के बिना नहीं प्राप्त कर सकता। परन्तु प्रश्न यह है कि वह प्रकृति से कैसा रिश्ता रखे। क्या उसके साथ समरसता एवं सौहार्द का भाव रखा जाय या उस पर आधिपत्य जमाकर संघर्ष एवं शोषण की नीति पर चले। वर्तमान भोग प्रधान अर्थव्यवस्था जिसका प्रारम्भ 18वीं शदी में औद्योगिक क्रान्ति के नाम से हुआ था एवं जिसकी मुख्य प्रेरणा संघर्ष तथा संग्रह है, ही आज आधुनिक विकास कहलाती हैं इसके मूल में जो विचार है वह है प्रकृति पर विजय पाने का विचार। इसी विचार का परिणाम है प्रकृति का अन्धाधुन्ध शोषण तथा उसके स्रोतों को अपने भोग के लिए उपयोग। याद रखे–भोग की कोई सीमा नही है, उसमें आपसी समझ का कोई स्थान नहीं है। प्रकृति को समझने की नीयत रखे बिना उसको जीतने की इच्छा से किया गया प्रदूषण, पानी, वायु, भूमि या वनस्पति अथवा रासायनिक खादों की समस्या हो, या वृक्षों की बेरहम कटाई हो या खानों की विनाशक खुदाई हो, या जल स्रोतों के सूखने की बात हो या नदियों के जल को बांधने की इच्छा हो, सारी प्रवृत्तियों में मनुष्य की विजय की झूठी महत्वकांक्षा, संघर्षभाव से उत्पन्न उसका अधैर्य एवं प्रकृति पर राज्य करने का उसका अहंकार निहित है। यह सब पश्चिमी दृष्टिकोण है जो दुनिया के पूर्वी भागों पर भी हावी हो गया है, जहाँ की संस्कृति इस दृष्टिकोण के बिल्कुल विपरीत थी।

राधा बहन[1] के अनुसार भारतीय संस्कृति में प्रकृति को मॉ माना गया हैं मनुष्य प्रकृति की गोद में एक बच्चे के समान हैं बच्चा मॉ का स्तनपान करता है पर मॉ के स्तन को काटकर खा नही जाता। पुरातन भारत में नदियों को मॉ कहा है, वृक्ष, भूमि, जल, तथा पशु को देवता माना है। इसका पश्चिमी दिमाग खिल्ली उड़ाता हैं हम प्रकृति की पूजा आज भले ही न करे, भले ही उसे देवता न मानें परन्तु हमें प्रकृति को आदर देना होगा, उससे समरसता स्थापित करनी होगी, यह बात आज पर्यावरण संरक्षण के मूल विचार तथा उसके व्यवहार के हर कदम के लिए अनिवार्य है।

* सहयुक्त आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रमुख पर्यावरणविद श्री सुन्दरलाल बहुगुणा[2] के अनुसार आज जिस दुनिया में हम रहते हैं, उसे विकसित, विकासमान और अविकसित–तीन भागों में बॉटा गया है। विकसित देश वे माने जाते हैं, जो भौतिक दृष्टि से सम्पन्न है। जहां व्यक्ति एवं समाज के पास भोग की अधिक से अधिक वस्तुएं हो, जहाँ संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग हो, प्रति व्यक्ति पानी का खर्चा, ऊर्जा का खर्चा इसका पैमाना माना जाता है।

यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने लोगों के विचारों में दो बुनियादी परिवर्तन किये है। 1. प्रकृति एक वस्तु है, जिसको बेचा और खरीदा जा सकता है, इसका अपना अस्तित्व नहीं है। 2. समाज केवल मनुष्यों का है। वर्तमान पश्चिमी विकास नीति, जो कि भारत की भी विकास नीति है, ने पर्यावरण प्रदूषण के अलावा दो और समस्याओं को जन्म दिया है, ये है युद्ध का भय और भूख। धनी देशों के लिए शस्त्रों का व्यापार अपनी अर्थव्यवस्था टिकाये रखने के लिए एक प्रमुख व्यवसाय बन गया है। इस व्यवसाय को बनाये रखने के लिए वे युद्ध के भय की मानसिकता बनाये रखते है। मानव जाति के इतिहास में रक्षा एवं भरण पर कभी भी इतना खर्चा नही हुआ है।

धनी देशों से आयातित विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तथा हथियारों की खरीद के लिए अधिकांश देश कर्जों के बोझ के नीचे दब गये हैं।

सुन्दरलाल बहुगुणा[3] के अनुसार विकास की दो कसौटियों पर भी बाहुल्य के लिए विकास का प्रचलित विचार खरा नहीं उतरता। पहली कसौटी है विकास निरन्तर होना चाहिए क्योंकि यह सीमित मात्रा वाले अनियंत्रीकृत साधनों, खनिज तेल, धातुओं आदि पर अधिकाधिक आश्रित है, इसलिए यह उनके भण्डारों की समाप्ति के बाद टिक नही सकता। सब लोगों के लिए विकास का वह स्तर प्राप्त करना सम्भव नहीं हैं सयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्ति पर्यावण और विकास कमीशन की रिपोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया है कि आज मात्र 20 प्रतिशत लोग हमारे उपग्रह (पृथ्वी) के 80 प्रतिशत साधनों का उपयोग कर रहे है। शेष 20 प्रतिशत साधन केवल 5 प्रतिशत लोगों के लिए यह स्तर प्राप्त करने के लिए पर्याप्त है तो फिर 75 प्रतिशत लोगों के लिये तीन नये उपग्रहों की सृष्टि करनी होगी। हमारा उपग्रह तो केवल एक ही हैं विकास की दूसरी कसौटी यह है कि उसका आधार नैतिक होना चाहिए। प्रकृति के भण्डारों को खाली करने के अलावा मौजूदा विकास नीति ने थोड़े मनुष्यों के लोभ–लालच की तुष्टि के लिए इस उपग्रह से अनेक जीव और वनस्पति प्रजापतियों को लुप्त कर दिया है। इस शताब्दी के अन्त में प्रति बीस भूवैज्ञानिक प्रो0 के0 एस0 वाल्दिया[4] के अनुसार पर्यावरण हानि के दो कारण है, पहला जमीन कम, लोग अधिक दूसरा पेट छोटा पर भूख बड़ी, हमारी क्षमता से अधिक हम उपभोग कर रहे हैं। संसाधनों पर संकट का यही सबसे बड़ा कारण है। जब तक विकास का मापदण्ड पैसा रहेगा तथा विकास नीति का लक्ष्य प्राकृतिक संसाधनों का अधिकाधिक उपभोग रहेगा तक तक पर्यावरण का संरक्षण एक भुलावा रहेगा। आज विकास की सही दिशा के लिए यह आवश्यक है कि हम पहले अपनी संस्कृति को पहचाने। विकास अपनी संस्कृति के अनुरूप करें। विकास के लिए पर्यावरण का संरक्षण आज अति आवश्यक है। पर्यावरण का संरक्षण करने के लिए आज पहली आवश्यकता रहे सहे वनों को संरक्षण देने की है। दूसरी आवश्यकता मिश्रित वनों के महत्व को समझाते हुए मिश्रित वनों को लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए। तीसरा विकल्प वन उपजों पर आधारित उद्योगों के लिए विकल्प ढूढने होगे, सौर ऊर्जा, वायोगैस आदि को बढ़ावा देना होगा। अन्तिम विकल्प वनीकरण है। भारत के पास 17 करोड़ 50 लाख हेक्टेयर ऐसी भूमि पड़ी है जो निकम्मी है।

उत्तराखण्ड में जन्में चिपको तथा कर्नाटक में जन्मे अपिको आन्दोलनों ने सारे देश में पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में जन जागरण का कार्य किया है। चिपकों आन्दोलन ने पंच जीवन वृक्ष–खाद्य, चारा, ईधन, जैविक खाद और रेशम प्रजाति के वृक्ष लगाने का मंत्र दिया है।

अरविद कुमार जैन[5] के अनुसार वनों की प्रजातियों की किस्म ऐसी होनी चाहिए जो स्थानीय लोगों के लिए उपयोगी हो। उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश में महुआ का पेड़ होता हैं इसकी लकड़ी इमारती लकड़ी के रूप में, इसकी शाखायें जलाऊ लकड़ी के रूप में, पत्ते चारे के लिए, फूल सब्जी के लिए ,फल, तेल निकालने के काम आता हैं हमें प्रत्येक स्थान पर ऐसी ही प्रजातियों को बढ़ावा देना होगा। गढ़वाल में ओक है, उत्तर प्रदेश में नीम है।

सुन्दरलाल बहुगुणा[6] के अनुसार आज वृक्ष को वस्तु समझकर उसकी हत्या करने वाले भोगवादी चिन्तन के स्थान पर ''वन है हमारे जीवन प्राण'' वाले भारतीय संस्कृति के सन्देश को आत्मसात करना होगा। यह केवल भारत के लिए ही नहीं पूरे विश्व के लिए भारत का सन्देश है जिसे वेदों से लेकर बुद्ध तक सबने मुखरित किया है।

ग्लोबल वार्मिंग :–

मानवीय गतिविधियों के कारण पिछले कई दशको से धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है, जिससे उसकी क्लाईमेट यानि जलवायु में आमूल–चूल परिवर्तन हो रहे है। इसे ही ग्लोबल वार्मिग या जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। तपमान का रिकार्ड रखने की शुरूआत 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुई। ये रिकाडर्स दिखाते है कि 20वीं शताब्दी में वैश्विक तापमान में औसतमन 0.60 ँ में वृद्धि हुई है। तापमान बढ़ने से बढ़े समुद्री जल के आयतन के कारण जलस्तर 10–20 सेमी तक बढ़ गया है। जलवायु सम्बन्धी वर्तमान अध्ययन बताते है कि यदि उत्सर्जन को रोकने के लिये कुछ नहीं किया गया तो सन् 2100 तक तापमान में 14 ँ से लेकर 5.8 ँ तक की बढ़ोत्तरी हो जायेगी। विश्व स्तर पर ऊष्मीय प्रभाव वाले मौसम का सहज अदांजा लगा सकते हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार जहॉ एक ओर वर्षा में बढोत्तरी होगी, वही दूसरी ओर महाद्वीपों के अंदरूनी इलाकों में गर्मी के दौरान सूखा पड़ने की सम्भावना बढ़ जायेगी साथ ही बढ़ते सागरीय जल स्तर व तूफानों के कारण बाढ की घटनाओं में तेजी आयेगी। जलवायु में हो रहे इन सब बदलावों के काफी दूरगामी परिणाम होंगे जैसे ताजे पानी की कमी, खाद्यान्न उत्पादन में कमी, बाढ़, तूफान, लू व सूखे के कारण लोगों की अकाल मृत्यु में बढ़ोत्तरी आदि। इस सब परिणामों का सबसे ज्यादा असर गरीब देशों पर पड़ेगा क्योंकि ऐसी स्थितियों से निपटने के लिये उनके पास संसाधन नही है। जन्तुओं और पौधों की कई प्रजातियां लुप्त हो जायेगी और मलेरियां, कुपोषण व जलजनित बीमारियों के बढ़ने से लाखों व्यक्तियों को स्वास्थ्य सम्बंधी परेशानियां उठानी पड़ेगी। औद्योगिक क्रान्ति के बाद जिस तरह से प्रकृति का दोहन किया गया है, उससे वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा में वृद्धि हुई है। ग्रीन हाउस गैसों में वे गैसे आती है जो वायुमण्डल के तापमान में निरन्तर वृद्धि करती हैं इनमें कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड, हाइड्रोफ्लूरो कार्बन, परफ्लोरों कार्बन और सल्फा हेक्साफ्लोराइड शामिल है। इन गैसों में सी0ओ02 का सबसे ज्यादा प्रभाव होता हैं वैश्विक तापमान पर नियंत्रण के लिये इन गैसों के उत्सर्जन को सीमित रखना आवश्यक है।

भारत पर प्रभाव –

भारत इस तरह के ग्लोबल वार्मिग के नतीजों से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले देशों में है। इसका असर पहले से ही दिखने लगा है, भारत पर बढ़ते तापमान का असर कुछ इस प्रकार होगा। वैज्ञानिकों ने हाल के दशकों में वर्षा ऋतु के दौरान देश के पश्चिमोत्तर इलाके में घनघोर बारिश में इजाफा और पूर्वी तट पर बरसात के दिनों में कमी रिकार्ड की हैं तबाही मचाने वाले बाढ़ की तीब्रता और बांरबारता में भी तेजी देखी गई है। बम्बई में 26 और 27 जुलाई 2005 को रिकार्ड 944 मिमी बारिश दर्ज की गई जिसे 1,000 से ज्यादा लोग मारे गये और 1,700 करोड़ रू0 का सम्पत्ति तबाह हो गई। हिमालय के हिमनदं चौकाने वाली दर से पिघल रहे है और सन् 2035 तक उनका नामों निशान तक नहीं रहेगा। इस तरह की घटना से न केवल हिमालय की पारिस्थितिकी और उस इलाके में रहने वाले लोग प्रभावित होगे बल्कि मैदानी इलाकों में भी काफी तबाही मचेगी। वह इसलिए कि गंगा और यमुना जैसी उत्तर भारत की बड़ी नदियों में साल भर पानी हिमनदों की वजह से ही रहता है। भारत के तटीय इलाकों में भी इतना खराब असर होगा कि इस सदी के अंत तक समुद्र का जल स्तर 40 सेंटीमीटर बढ़ने का आशंका है इसकी वजह से निम्न तटीय इलाकों में रहने वाले लाखों लोगों के घरों में पानी घुस जायेगा और वे विस्थापित हो जायेगे। समुद्र के जल स्तर में इतनी वृद्धि से देश में करीब 5 करोड़ लोग प्रभावित होगे और वे बेघर हो जायेगे।

पेयजल– भारतीय उपमहाद्वीप में जाड़े में होने वाली बॉरिश भी कम हो जायेगी। जिससे पानी का भंडार कम हो जायेगा और जल संकट गंभीर रूप धारण कर लेगा, फिलहाल, भारत में प्रति व्यक्ति सकल जल उपलब्धता 1820 घन मीटर है जो 2050 में घटकर 1140 घन मीटर रह जायेगी, यानि इसमें कुल 30

फीसदी कमी होगी। पानी की इस कदर किल्लत से करीब 50 करोड़ लोगों या देश की आधी आबादी पर विपरित प्रभाव पड़ेगा।

कृषि– ग्लोबल वार्मिग से खासकर कृषि बुरी तरह प्रभावित होगी। अगले 30 साल में फसलों की पैदावार 30 फीसदी तक कम हो सकती है। जाड़े के दिनों में मात्र 0.5 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से गेहूँ की फसल प्रति हेक्टेयर 0.45 टन कम हो सकती है। यानि उत्पादकता में 17 फीसदी की कमी होगी। धान की खेती पर भी इसी तरह का कुप्रभाव पड़ेगा। चावल का उत्पादन 15से 43 प्रतिशत गेहूँ का उत्पादन 3 से 4 प्रतिशत गिर जायेगा। बारिश में 7 प्रतिशत की कमी और तापमान में 2 डिग्री से की वृद्धि से कृषि के कुल राजस्व में 12.3 प्रतिशत गिरावट आयेगी। बारिश आधारित खेती को 12.5 करोड़ टन का नुकसान झेलना पड़ेगा। दूसरी ओर, प्राकृतिक घास के मैदान सिमटने की वजह से रेगिस्तानी इलाके का दायरा बढ़ेगा।[7]

'' अमेरिका के जॉर्ज बुश के विरूद्ध डेमोक्रेटिक पार्टी के उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने वाले अलगोर ने 'ग्लोबल वार्मिग' (भूमण्डलीय तापवृद्धि) के कारण पर्यावरण के विनाश का जो खतरा पैदा हो गया है उसके प्रति जागरूकता फैलाने के लिये विश्वव्यापी अभियान चला रखा है और इसके कारण उन्हें नोबल पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है। प्रकृति और पर्यावरण के सामने मौजूद को वैश्विक स्तर पर एक गंभीर चिंता का विषय स्वीकार किया गया है। जलवायु परिवर्तन के मसले पर कई अन्तराष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके है। अलगारे का यह कहना सही है कि आज मनुष्य के पास विज्ञान है, जिससे वह उसका समाधान कर सकता है, लेकिन यह भी सच्चाई है कि पर्यावरण की स्थिति निरन्तर बद से बदतर होती जा रही है इसका बुनियादी कारण है कि पूँजीवादी विकास का वह रास्ता, जो प्राकृतिक संसाधनों के अविवेकपूर्ण और विषमतामूलक उपयोग पर आधारित है। जल, जमीन या जंगल के दुरूप्योग से इन प्राकृतिक संसाधनों के विनाश का गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। पर्यावरण का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के अपने वजूद से है। पूँजीवाद एक ऐसा शोषणकारी व्यवस्था है, जिसकी दृष्टि हमेशा आज के लाभ और उपयोग पर रहती है। भूमंण्डलीय तापवृद्धि इसी स्वार्थ–प्रेरित जीवन दृष्टि का परिणाम है।

आज विकसित देशों को भी ऐसे मुद्दे पर ईमानदारी से विश्व का साथ निभाने की आवश्यकता है। इसीलिये पर्यावरणीय जागरूकता के प्रचार–प्रसार के लिये आज सभी विषयों में पर्यावरणीय पहलुओं पर जोर दिया जा रहा है। यदि आज विश्व से सभी देश मिलकर इस समस्या का समाधान तलाशेंगे और अपने उत्तरदायित्वों को स्वीकार नहीं करेंगे तो पृथ्वी और मानव जाति के विनाश को रोकना मुश्किल ही नहीं बल्कि असम्भव होगा। ऐसे में पारम्परिक निर्भरता को स्वीकार करते हुए वैश्विक पारस्परिक सहयोग ही इस समस्या का सर्वोत्तम साधन माना जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. राधा बहन, हिमालय में विकास नीति की सही दिशा एवं पर्यावरण संरक्षण, अलखनन्दा किनारे, 5 जून, 1994, श्रीनगर गढ़वाल।
2. सुन्दरलाल बहुगुणा, विकास और पर्यावरण, पृष्ठ 73, पर्यावरण और वन संरक्षण समस्या एवं समाधान (सम्पादित) तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
3. वही, पृष्ठ 79
4. के0एस0 वाल्दिया, हिमालय में पर्यावरण समस्या, पृष्ठ 10, अलखनन्दा किनारे, 5 जून, 1994, श्रीनगर गढ़वाल।
5. अरविन्द कुमार जैन, वनों से लाभ और सामाजिक वानिकी, पृष्ठ 97 पर्यावरण और वन संरक्षक– समस्या एवं समाधान (सम्पा) तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991
6. सुन्दरलाल बहुगुणा, हमारे वन है जीवन प्राण, पृष्ठ 56, पर्वतीय नवजीवन मण्डल, सिल्यारा, टिहरी गढ़वाल, 1986.
7. पर्यावरणीय अध्ययन '' धड़कन पब्लिकेशन, 259 प्रभात भारती, मेरठ, पृष्ठ 27, 33, 34।
8. रमेश उपाध्याय, पूँजीवादी प्रपंत्र में प्रकृति और पर्यावरण सम्पादक– शब्दसंधान प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 59, 60।

●